फ़र्क पड़ता है

सत्येंद्र सिंह

फ़र्क पड़ता है

(कविता-संग्रह)

सत्येंद्र सिंह

एम.ए. (हिंदी), साहित्य-सुधाकर, पत्रकारिता-उपाधि
पूर्व वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी,
मध्य रेल, पुणे (महाराष्ट्र)

जवाहर पुस्तकालय

हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक

मथुरा-281001 (उ.प्र.)

संपर्क
"रामेश्वरी-सदन"
51/ 44 सप्तगिरी सोसायटी, जांभुलवाडी रोड,
आंबेगांव खुर्द, पुणे खुर्द - 411046 (महा.)

द्वारा श्री रमेश चंद्र, से.नि. जन संपर्क निरीक्षक (डाक विभाग)
1096-बी, पुरानी छावनी, सदर बाजार, मथुरा-281001 उ.प्र.
मोबाइल : 9922993647
ई-मेल : singhsatyendra.380@gmail.com

ISBN : 978-81-945489-4-2

© : सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक : **गोविन्द पचौरी**
जवाहर पुस्तकालय
हिंदी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक
सदर बाजार, मथुरा-281001 (उ.प्र.)
दूरभाष : 09897000951
ई-मेल : jawahar.pustakalaya@gmail.com

मूल्य : 200.00 (दो सौ रुपये मात्र)

प्रथम संस्करण : 2020

आवरण : प्रज्ञा, भूपेंद्र सिंह

शब्द-संयोजन : गीता डिजाइनिंग ग्रुप, दिल्ली-110094
मो. : 09350345268, 7065961628

मुद्रक : जय भारत प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

समर्पण

प्रातः स्मरणीया पूजनीया मां श्रीमती कृष्णा देवी
को,
जिसने पिता बनकर भी पाला, पोषा,
अपनी अटूट साधना,
निस्पृह जीवन से
मुझे सींचा, अभिभूत किया।

–सत्येंद्र सिंह

आमुख

कविता क्या आत्माभिव्यक्ति है. जो देखा, सुना, भोगा और उसकी मन पर जो प्रतिक्रिया हुई लिख दिया. तुकांत या अतुकांत. वही मेरी कविता है.

उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले की सादाबाद तहसील के जटोई नामक गांव में जन्म हुआ. (अब शायद जिला हाथरस हो गया है). जन्म की सही तारीख तो पता नहीं, बांया कान पकड़वा कर 1 जून 1949 तय की थी मास्टर साहब ने . यही सरकारी दस्तावेज में दर्ज है. प्रपिता मोहर सिंह. पिता होती लाल. अध्यापक थे. मुंशी जी के नाम से प्रसिद्ध थे. मेरे जन्म लेने के लगभग एक वर्ष बाद ही स्वर्गवासी हो गये. गांव में पूजनीया मां सबसे बड़े भाई पन्नीलाल जी ने पाला पोषा. अब वे भी नहीं हैं. दूसरे बड़े भाई श्री रमेश चंद्र जी ने मथुरा लाकर पढ़ाया लिखाया. वे पोस्ट ऑफिस में थे. उन्होंने ही मुझे श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ में नौकरी पर लगाया. वे उस समय सब पोस्ट मास्टर थे (अब जन संपर्क निरीक्षक डाक विभाग पद से सेवानिवृत्त).

उस समय श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ के सचिव सुनामधन्य पूज्य स्व. श्री वियोगी हरि जी थे. संयुक्त सचिव पं. देवधर शर्मा शास्त्री जी और व्यवस्थापक श्री बंशीधर उपाध्याय थे. बंशीधर जी ने मुझे छोटे भाई जैसा प्यार दिया. मेरा मुख्य काम था पं. देवधर शर्मा जी की डिक्टेशन लेना. हिंदी अंग्रेजी टाइपिंग और अंग्रेजी शॉर्टहैंड जानता था और हिंदी शॉर्टहैंड सीख रहा था. लिहाजा लॉग हैंड में डिक्टेशन लेता था. सन् 1966 में क्लैंसी स्कूल से हाईस्कूल उत्तीर्ण किया. स्कूल में मेरे सहपाठी हेतराम सैनी मेरे घनिष्ट मित्र बने जो आज भी हैं. वे अपर जिला व सत्र न्यायाधीश बिजनौर के पद से सेवानिवृत्त होकर मथुरा में ही हैं. 1968 में चंपा अग्रवाल इंटर कॉलेज जिसमें हेतराम सैनी के साथ उमेश लवानिया घनिष्ट मित्र बने. लवानिया अभी कहां हैं पता नहीं पर जेह्न में आज भी हैं. क्लास टीचर व हिंदी के लेक्चरर डा. तत्राड़ी जी और वाइस प्रिंसिपल श्री गणेशीलाल अठासिया जी की विशेष

कृपा थी. इंटर की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया. साइंस बायलॉजी का विद्यार्थी था. इसलिए भाषा पर कोई अधिकार नहीं था. पं. देवधर शर्मा हिंदी के प्रकांड विद्वान थे, उनकी डिक्टेशन लेने से घबड़ाता था, क्योंकि मुझे अपेक्षा और उपेक्षा में ही अंतर पता नहीं था. पर बंशीधर जी मेरे भगवान थे. पूरी तरह मुझे संभाला. हिंदी पर अधिकार होता गया, अध्ययन करता रहा और पूज्य वियोगी हरि जी की भी डिकेटेशन लेने योग्य हो गया. उनकी डिक्टेशन लेते और उनकी पुस्तकें टाइप करते समय अभिभूत था मैं. कृष्णमय वातावरण तो रहता ही था, पर कबीर साहब को उनके सान्निध्य में ही समझने की चाह पैदा हुई. एक पत्र के उत्तर में उन्होंने लिखा था कि कबीर साहब को समझना है तो सत्य रूप परमेश्वर की उपासना करो. यह बात अभी भी हृदय में बैठी हुई है. सेवासंघ के अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनिवासजी बिरला थे या श्री जयदयालजी डालमिया, यह याद नहीं है पर उपाध्यक्ष पूज्य हनुप्रसादजी पोद्दार थे. ट्रस्ट की बैठक के समय उनके दर्शनों का भी सौभाग्य मिला था. पूज्य श्री जयदयाल डालमिया जी से भी मैं बहुत प्रभावित था, विशेषकर उनके सादा परिधान से वह अब भी इतना गहरा है कि मैं सूती कपड़े बिना प्रेस के ही पहनता हूं. श्रीकृष्ण-जन्मभूमि पर हरिदास जयंती के अलावा बहुत धार्मिक कार्यक्रम होते रहते थे. बहुत बड़े बड़े संगीतकार व कलाकार आते थे उसमें. पं. रविशंकर जी का सितार सुनने को मिला. सितारा देवी जी का नृत्य भी देखने का सुअवसर मिला, लेकिन सबसे ज्यादा मुझे प्रभावित किया मानस मार्तंड पं. राम किंकर उपाध्याय जी के प्रवचनों ने. चाहे एक सप्ताह बोलें या दो सप्ताह पर एक ही पात्र पर प्रवचन करते थे. प्रवचन से पहले 2 घंटे एकनिष्ठ पूजा. उसके बाद घंटों बोलना.

श्रीकृष्ण-संदेश नामक मासिक पत्रिका भी जन्मभूमि से प्रकाशित होती थी, जिसके प्रेषण का काम मैं ही करता था. उस समय पत्रिका वाराणसी में मुद्रित होती थी. संपादक थे पं. रामनारायण शास्त्री. बहुत शांत व मितभाषी. बाद में संपादक मंडल भी बना, जिसमें डा. भगवान सहाय पचौरी जी भी थे. मैं चुपके चुपके कविता कहानी लिखने लगा था. पता नहीं कैसे मेरी एक कहानी पचौरी जी ने देख ली और ठीक करने के लिए ले ली. श्रीकृष्ण-संदेश में प्रकाशित भी करदी. संभवत: यह 1969-70 की बात होगी. यह मेरी पहली प्रकाशित रचना थी. उस समय भागवत-भवन बन रहा था. एक हिस्से में श्री मोहनस्वरूप भाटिया जी का प्राइमरी स्कूल था. भाटिया जी

बड़े अच्छे लेखक व मृदुभाषी हैं. (उन्हें पद्मश्री मिलने पर बहुत अच्छा लगा). वे बड़ा स्नेह करते थे मुझे. उन्हें कभी भुला नहीं पाया. श्रीकृष्ण-संदेश के संपादक जब तक सुदर्शन सिंह चक्र जी थे, तब तक प्रकाशित होती रही. ट्रस्ट की नौकरी में वेतन बहुत कम मिलता था. भरतपुर की एक बड़ी तेल मिल बी.आर.आइल मिल में स्टेनोग्रफर के पद पर नौकरी लग गई. उस मिल के मालिक थे नगरसेठ लाला श्री संतोषीलाल गोयल. वे बहुत कुशाग्र बुद्धि और बहुत ही रुआबदार व्यक्तित्व के धनी थे. उनके सामने किसी का बोल नहीं निकलता था. बहुत सम्मान था उनका. गरीबों के प्रति कृपालु, लेकिन जाहिर नहीं करते थे. ऊपर से कठोर ही बने रहते थे. जन्मभूमि पर रहते सरकारी नौकरी के लिए तो आवेदन करता ही रहता था. रेलवे में टाइपिष्ट के पद पर चयन हो गया और मैं उन्हें बिना बताए एक दिन की छुट्टी लेकर भाग आया और रेलवे ज्वाइन कर ली. भाई मोहनलाल जी रेलवे में ही ग्वालियर में थे तो कोई परेशानी नही पुई. सरकारी नौकरी का मोह और सेठजी के अहसानों के बोझ ने मुझे डरपोक बना दिया, जिसने मेरा पीछा कभी नहीं छोड़ा. उनका नाम सुनकर तो आज भी डर लगता है और यहां उल्लेख नहीं भी करता तो चल जाता लेकिन उनका एक बहुत बड़ा उपकार ऐसा है कि उसका बदला तो चुका ही नहीं सकता. अगस्त 1973 में रेलवे ज्वाइन किया था. उससे पहले गर्मियों में सेठ श्री संतोषीलाल गोयल जी की कृपा से वृंदावन में यमुना किनारे मचान पर विराजे प्रातःस्मरणीय पूज्य देवरहा बाबा के श्रीचरण मेरे सिर पर भी पड़े थे. हालांकि उस समय मुझे रेलवे में हुए चयन की जानकारी नहीं थी. आज यहां सब लिख कर बहुत हल्का महसूस कर रहा हूं.

रेलवे में चयन तो हुआ टाइपिस्ट के पद पर लेकिन ज्वाइन किया लिपिक के रूप में डी.एस.ऑफिस झांसी में, वह भी परिचालन विभाग में. उस समय मंडल अधीक्षक हुआ करते थे. हिंदी का भूत तो सवार था. बड़ी मुश्किल से अंग्रेजी में हस्ताक्षर करने की आदत डाली. लेकिन जैसे ही पता चला कि मैं हिंदी में काम कर सकता हूं तो फिर रुका नहीं. पत्र तो हाथ से लिख लेता पर स्टेंसिल काटने की दिक्कत थी. अंग्रेजी की टाइप मशीन सभी जगह थीं पर हिंदी की नहीं. पता चला कि बिल्डिंग में कहीं हिंदी सेक्शन है. पूछते पूछते ढूंढ़ लिया और हिंदी में टाइप करने की सुविधा मिल गई. वहां हिंदी पुस्तकालय भी था. वह भी निःशुल्क. फिर क्या था, हिंदी की अच्छी पुस्तकें ओर हिंदी में काम. विवाह 1972 में हो ही चुका था और सरकारी

नौकरी लग गई, बस जीवन सफल. मेरा हिंदी प्रेम देखकर हिंदी सेक्शन के सीनियर ट्रांसलेटर श्री तेजीलाल मिश्र (सेवानिवृत्त राजभाषा अधीक्षक झांसी) कोशिश करके मुझे हिंदी सेक्शन में ले आए. उनका जनसंपर्क बहुत अच्छा था. मेरे अध्ययन की रुचि को देखकर मेरे अग्रज समान मित्र श्री जयनारायण शर्मा (से.नि. कार्यालय अधीक्षक झांसी कारखाना) के सुझाव पर आगे परीक्षा देना शुरू कर दिया और प्राइवेट इंटर किया, बी.ए. किया. बी.ए. करने के बाद पी.सी.एस. में डिप्टी कलेक्टर पद की परीक्षा में बैठने का एक अवसर मिला, पर असफल रहा. अध्यात्म, साहित्य और दर्शन में बहुत रुचि होने के कारण दर्शनशास्त्र से एम.ए. करना चाहता था पर नवसृजित बुंदेलखंड विश्वविद्यालय में सुविधा न होने के कारण हिंदी विषय से एम.ए. किया. विभागीय पत्रिका में कविता कहानी छप जाते थे. स्व. दुर्गाप्रसाद दुबे तत्कालीन वरिष्ठ हिंदी अनुवादक (से.नि. राजभाषा अधिकारी, नागपुर) और कवि के साथ कवि गोष्ठियों में भी जाना शुरू हो गया था. उस समय हिंदी शॉर्टहैंड जानने वाले इक्का दुक्का थे. अंग्रेजी स्टेनेग्राफरों को हिंदी शॉर्टहेंड सिखाने के लिए अंशकालीन रूप से मुझे लगा दिया गया . मध्य रेल के श्री रवींद्रनाथ चतुर्वेदी जी सहायक हिंदी अधिकारी थे. हिंदी विभाग का सर्वोच्च पद यही था. श्री राजेंद्र बिहारी उपाध्याय हिंदी पर्यवेक्षक थे. झांसी और जबलपुर मंडल उनके अधीन थे, पर उनका मुख्यालय जबलपुर था. स्व. स्वरूप भटनागर, प्रधान हिंदी अनुवादक थे. मंडल पर हिंदी अनुभाग का यही प्रभारी पद होता था.

उस समय रेलवे में हिंदी विभाग का बड़ा सम्मान था. श्री शिवसागर मिश्र रेलवे बोर्ड में निदेशक राजभाषा थे. उन्होंने भारतीय रेल पर हिंदी के पद व स्तर बढ़ाकर एक वटवृक्ष खड़ा कर दिया. संघ लोक सेवा आयोग से प्रथम श्रेणी के अधिकारी के पदों पर भरती करवाई. मध्य रेल पर प्रथम श्रेणी के प्रथम हिंदी अधकारी के रूप में श्री विजय कुमार मल्हेत्रा जी (से. नि. निदेशक राजभाषा रेलवे बोर्ड) ने पदभार ग्रहण किया और उन्हीं के द्व ारा मेरा चयन कनिष्ठ हिंदी अनुवादक के रूप में हुआ. मल्होत्रा साहब से पहली मुलाकात झांसी में ही तब हुई थी जब वे पहली बार निरीक्षण करने आये थे. उनका फिल्मी नायक जैसा शरीर सौष्ठव और विद्वतापूर्ण व्यक्तित्व आज भी मानस पटल पर अंकित है.

1981 में बंबई आ गया. उस समय स्व. श्री बी.एस.सिरोही, मलहोत्रा साहब की जगह आ गये थे. मैं एक दो साल बाद रेल सुरभि का सहायक

संपादक नियुक्त हुआ और रेल साहित्यकारों से तो जुड़ा ही, कुछ साहित्यिक गतिविधियां भी बढ़ीं. श्री आई.एन.आर्य, मुख्य सतर्कता निरीक्षक के संपादन में एक नवांकुर नामक कहानी संग्रह का प्रकाशन हुआ जिसमें मेरी भी कहानी थी. वरिष्ठ साहित्यकार श्री विश्वनाथ मिश्र से संबंध बने. थे तो वे भायखला अस्पताल में चीफ फार्मासिस्ट पर लेखक गजब के थे. दस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं उनकी. इसी दौरान धर्मयुग के कैलाश सैंगर, सुमन सरीन, गीतकार राजेश जौहरी आदि रेलवे से बाहर के लेखकों से परिचय हुआ, संबंध भी बने. 1985 में मेरी भी एक कविताओं का एक संग्रह "एक मुट्ठी आसमान" प्रकाशित हो गया. इसी वर्ष किन्हीं परिस्थितियोंवश मुझे नर्वस ब्रेकडाउन का अटैक पड़ा. पैर में फ्रैक्चर भी हो गया. और सहायक संपादक का पद समाप्त करके मुझे जबलपुर स्थानांतरित कर दिया गया. मैं इस अवधि को अपने जीवन के सबसे बड़े दुर्दिन समझ रहा था, पर नियति को कुछ और ही मंजूर था. श्री आई.एन.आर्य जबलपुर में ही रेलवे सेक्शनल ऑफीसर (सीबीआई) थे और पूज्य श्री राजेंद्र बिहारी उपाध्याय वरिष्ठ हिंदी अधिकारी. उनका भरपूर प्यार व आशीर्वाद मिला. आर्य जी ने लेखन की लगन बनाए रखकर जहां मुझे टूटने से बचाया वहीं अनुजवत् मित्र अरुण श्रीवास्तव के सहयोग से आकाशवाणी जबलपुर से जुड़ा. उस समय आदरणीय श्री लीलाधर मंडलोई जी (सेवानिवृत्त महानिदेशक प्रसार भारती व निदेशक भारतीय ज्ञानपीठ) सहायक निदेशक आकाशवाणी थे. कविता व कथा प्रसारण का मेरा यह अलौकिक अनुभव था. जो रचना प्रसारित हो जाती वह दैनिक भास्कर या जागरण में प्रकाशित भी हो जाती. एक नया सत्येंद्र बन गया मैं जब पूज्य प्रोफेसर ज्ञानरंजन जी से मुलाकात हुई. प्रोफेसर साहब वरिष्ठ कहानीकार थे, पर देखने में एकदम सरल व सीधे सादे. वे प्रगतिशील लेखक संघ के सचिव थे. उनके साथ बैठना ही बड़ा सुकून देता था, आज भी देता है. खैर उनके यहां और अन्य लेखकों के यहां साहित्यिक गोष्ठियों में जाने लगा. इससे पहले कभी किसी गोष्ठी में नहीं गया था. सुनामधन्य सुप्रसिद्ध व्यंग्यलेखक पूज्य स्व. श्री हरिशंकर परसाई जी प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष थे. उनके दर्शन होते पर बोलने में डर लगता था. उनका अध्ययन विशाल तो था ही, शब्द को पकड़ कर जो तोड़ मरोड़ कर डालते थे कि कहते नहीं बनता. वे बैठ नहीं पाते थे. पलंग पर लेटे रहते थे. पलंग आधा सा उठा रहता था. उसी अवस्था में वे पढ़ते रहते. वे बहुत पढ़ते थे. जिस

ट्रांसफर को मैं कोसता था, वही सौभाग्य बन गया. जबलपुर के राजकुमार तिवारी सुमित्र, आरुण पांडेय, वंशीवादक मुरलीधर नागराज व उनकी पत्नी तापसी नागराज, श्याम श्रीवास्तव, सतीश तिवारी घनश्याम चौरसिया बादल ऐसे कितने साहित्यकार कलाकार हैं जिन्होंने मेरी लेखनी को जीवित रखने में मेरी मदद की. यहां एक नाम भूल रहा हूं विलक्षण प्रतिभा के धनी सुरेश पांडेय कार्यक्रम अधिकारी आकाशवाणी, जिन्होंने मेरी पहली रिकार्डिंग की. श्याम श्रीवास्तव के साथ एक दो गोष्ठी में सुप्रसिद्ध गीतकार पं. रामेश्वर शुक्ल अंचल जी से भी मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ.

मैंने महसूस किया है कि अचानक कुछ ऐसा होता है कि जीवन ही बदल जाता है. मुझे केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो नई दिल्ली में अनुवाद प्रशिक्षण के लिए भेजा गया. वहां मेरे मित्र श्री विक्रमजीत पांडेय वरिष्ठ अनिवादक के रूप में कार्यरत थे. तीन माह का प्रशिक्षण-काल पता ही नहीं चला कैसे बीत गया, लेकिन इस अवधि में पांडेय जी ने (जो अब से.नि. संयुक्त निदेशक राजभाषा केंद्रीय सचिवालय हैं) एक परिपत्र मुझे दिया और आग्रह किया कि मैं उनका कहना मानकर आवेदन भेज दूं. आयकर विभाग में प्रतिनियुक्ति पर सहायक निदेशक(राजभाषा) के पद के लिए आवेदन मांगे गये थे. उन्होंने वहीं से आवेदन बनाकर भिजवा दिया. जबलपुर में उस समय आदरणीय श्री प्रमोदकुमार मिश्र वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी थे. वे मुझे बहुत चाहते थे. उन्होंने भी मेरे प्रशिक्षण काल में ही मेरा आवेदन अग्रेषित कर दिया. कुछ दिन बाद मेरा चयन भी हो गया और आयकर आयुक्त कार्यालय कोल्हापुर में नियुक्ति हो गई. आदरणीय श्री मिश्र जी ने वहीं से सीधे कार्यमुक्त करा दिया. कोल्हापुर मेरे लिए एकदम नया था. मराठी आती नहीं थी. स्वतंत्र रूप से भी कभी कार्य नहीं किया था. वहां सहायक निदेशक (राजभाषा) का पद नया सृजित हुआ था और मेरी पदस्थापना पहली थी. शून्य से काम शुरू करना पड़ा. पर वाह रे कोल्हापुर और वहां के लोग. किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होने दी मुझे. हिंदी भाषा, हिंदी टंकण व आशुलिपि का प्रशिक्षण, रपट भेजना, कोल्हापुर के केंद्रीय कार्यालयों,बैंकों, उपक्रमों की सूची बनाने से लेकर नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की स्थापना, सब कुछ हो गया. आकाशवाणी सांगली से रचना प्रसारण का भी अवसर मिला. शिवाजी विद्यापीठ के हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. वसंत मोरे जी के निर्देशन में पी.एचडी का पंजीयन भी हो गया. हालांकि स्वास्थ्य की समस्या के चलते

शोधकार्य कर नहीं पाया. यूं तो बंबई विश्वविद्यालय में डॉ.सी.एल.प्रभात जी के निर्देशन में भी पंजीयन हो गया था, स्वास्थ्य और स्थानांतरण के कारण पूरा नहीं कर पाया. जबलपुर में रहते हुए मैंने अंग्रेजी और दर्शनशास्त्र में एस.ए. करने का भी प्रयास किया, पर दोनों के प्रथम वर्ष ही कर पाया. यह इच्छा आज भी अधूरी है.

प्रतिनियुक्ति के तीन वर्ष काटकर राजभाषा अधीक्षक के रूप में सोलापुर आया. वहां दो वर्ष स्वास्थ्य बहुत खराब रहा. कोई गतिविधि नहीं. डॉ. राजेंद्रकुमार गुप्ता जी तत्कालीन वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी मध्य रेल के कार्यकाल में राजभाषा अधिकारी के रूप में प्रोन्नत होकर झांसी आ गया. उनकी मेरे ऊपर बहुत कृपा रही, आज भी है. झांसी में पुराने मित्रों का भरपूर सहयोग मिला. रुकी हुई लेखनी फिर चलने लगी. आकाशवाण ी, स्थानीय समाचार पत्रों में रचना प्रकाशन, साहित्यिक गोष्ठियां अपने चरम पर रहीं. लेखकों कवियों में पं. रमेश चौबे, मदन मानव, राजकुमार अंजुम, अवधेशजी, स्व. त्रिभुवननाथ त्रिवेदी, शीलेंद्रकुमार वशिष्ठ, देहदान कर झांसी के दधीचि बने स्व.दिनेश बैस, कमलेश झा, श्रीमती चंद्ररेखा सिंह, स्व.डॉ. अनामिका रिछारिया, श्रीमती अलका पटेल, साकेत सुमन चतुर्वेदी, प्रेमकुमार गौतम, स्व. डॉ. महेंद्र वर्मा, स्व. गोपीचंद श्रीनागर, कुंती हरीराम, अर्जुनसिंह चांद, कश्वी झांसवी, अवधेश चतुर्वेदी, शमीम शेख, ओमशंकर खरे असर जी, की बड़ी कृपा रही. चित्रकार डॉ. जी.पी.शुभेश के शोधग्रंथ ने बहुत जानकारी दी. बुंदेली साहित्य व इतिहास के अध्ययन में उनका योगदान सराहनीय रहा क्योंकि इन सबके कारण लाइट एंड साउंड शो, झांसी स्टेशन पर लगे फलक का लिखना संभव हो सका. राजकीय संग्रहालय में आयोजित सभी कार्यक्रम बहुत याद आते हैं. विभागीय स्तर पर वैसे तो सभी मंडल रेल प्रबंधकों की कृपा रही फिर भी अपर मंडल रेल प्रबंधक श्री के.एल.पांडेय (से.नि. अपर सदस्य यातायात रेलवे बोर्ड) तथा श्री ए.के.श्रीवास्तव जी (वर्तमान में सदस्य रेलवे क्लेम्स ट्रिब्यूनल) की विशेष कृपा रही, जिससे मुझे साहित्य सृजन में प्रेरणा मिली. श्री गुलाबचंद, केंद्र निदेशक आकाशवाणी के सहयोग से झांसी और छतरपुर से रचना प्रसारण का अवसर भी मिला. छतरपुर में श्री सुनील देवधर जी से संपर्क हुआ जो आज भी बना हुआ है, उन्होंने पुणे में भी रचना प्रसारण का सुयोग प्रदान किया. पुणे में श्री संजय भारद्वाज ने हिंदी आंदोलन परिवार से जोड़कर साहित्य सृजन से जोड़ा हुआ है तो पूज्य श्री ज.ग. फगरे

जी. संचालक, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने समिति का सदस्य बनाकर हिंदी साहित्य का विद्यार्थी बनाये रखा है. दोनों का कृतज्ञ हूं.

यह सब कुछ आत्मश्लाघा नहीं है. मेरी कवितओं,कहानियों आदि का प्रेरणास्रोत है. इतना सब होते हुए, लेखकों कवियों और उनकी पुस्तकों का आनंद लेते हुए भी कभी अपना संग्रह प्रकाशन की विशेष इच्छा नहीं हुई. प्रिय मित्र श्री शीलेंद्रकुमार वशिष्ठ (आगरा), श्री दिनेश पाठक शशि (मथुरा) व श्री दिनेश चंद्रा, संपादक हडपसर एक्सप्रेस, पुणे की प्रेरणा से अपनी कविताओं को संजो पाया. श्री वशिष्ठ जी ने अपनी पत्रिका "चर्वणा" में कविताएं प्रकाशित करके भी प्रोत्साहन दिया है. यदि यह संग्रह प्रकाशित होता हे तो उसका श्रेय इन्हीं को जाता है.

–सत्येंद्र सिंह

आभार

सर्वप्रथम धर्मपत्नी रामेश्वरी का, जिसने हर कदम पर मेरा साथ दिया. मेरी लिखी हुई एक-एक चिंदी को संभालकर रखा और मुझे कठिन से कठिन परिस्थिति में भी कभी हतोत्साहित नहीं होने दिया.

पुत्र लोकेंद्र, भूपेंद्र, पुत्री मैत्रेयी, पुत्रवधु सुचिता, प्रज्ञा और दामाद योगेश का, जिन्होंने अपनी जिम्मेदारियां स्वयं संभालकर मुझे चिंता मुक्त रखा और उपयुक्त सुविधाएं जुटाते हुए लिखते रहने के लिए आग्रह करते रहे. भूपेंद्र व प्रज्ञा ने मुख्यपृष्ठ बनाने में सराहनीय रुचि ली है.

बड़े भ्राता श्री रमेश चंद्र व भाभी प्रेमलता जी का जिन्होंने माता-पिता के समान परवरिश दी. भैया श्री मोहन लाल व भाभी शशिप्रभा का, जिन्होंने जीवन के पर मोड़ पर साथ दिया.

वरिष्ठ कथाकार प्रो. ज्ञानरंजन जी, श्री लीलाधर मंडलोई, पूर्व महानिदेशक प्रसार भारती व निदेशक भारतीय ज्ञानपीठ, जिन्होंने हमेशा वरद्हस्त मेरे सिर पर रखा है. डा. विजयकुमार मल्होत्रा जी, से.नि. निदेशक(राजभाषा) रेलवे बोर्ड का, जिन्होंने अनुजवत् स्नेह प्रदान किया और हर मुसीबत में संबल प्रदान किया.

श्री के.पी.सत्यानंदन, पूर्व निदेशक (राजभाषा) रेलवे बोर्ड का, जिन्होंने मित्रवत् स्नेह दिया और हर समय साथ दिया.

डॉ. राजेंद्रकुमार गुप्त, पूर्व उप मुख्य राजभाषा अधिकारी मध्य व पश्चिम रेल, जिन्होंने व्यावहारिक ज्ञान देते हुए अनुजवत् स्नेह दिया.

श्री धीरेंद्रकुमार झा, पूर्व उप मुख्य राजभाषा अधिकारी मध्य रेल का, जिन्होंने गुरु समान मार्गदर्शन किया.

श्री विपिन पवार, उप महाप्रबंधक (राजभाषा) का, जिन्होंने अनुज, मित्र व सहयोगीस्वरूप हमेशा साथ दिया.

सेनि वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी श्री राजेंद्रबिहारी उपाध्याय, श्री रवींद्रनाथ

मिश्र, श्री रामेश्वर दुबे, श्री गौरीशंकर चौरे, श्री प्रमोदकुमार मिश्र, स्व.रामचरण धमानिया, स्व. रामनरायन तिवारी जिनका उपकार कभी भूल नहीं सकता.

श्री गुलाब चंद्र कार्यकारी निदेशक आकाशवाणी, श्री सुरेश पांडेय पूर्व केंद्र निदेशक व वर्तमान केंद्र निदेशक आकाशवाणी झांसी श्री कंवल नरायन, व श्री सुनील देवधर, पूर्व कार्यक्रम अधिकारी, आकाशवाणी पुणे जिन्होंने बड़ी रुचि के साथ मेरी रचनाएं प्रसारित कीं और प्रोत्साहित किया.

श्री प्रताप वगड़वाल वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी जबलपुर, श्री चंद्रभूषण पांडेय वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी इलाहाबाद, श्री रामप्रसाद शुक्ल वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी मुख्यालय मुंबई, श्री केशव त्रिपाठी, श्री कृपाशंकर मिश्र वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी इलाहाबाद, श्री मनमोहन भटनागर राजभाषा अधिकारी झांसी, श्री पवनकुमार मिश्र राजभाषा अधिकारी इलाहाबाद, श्री शेषनाथ पुष्कर राजभाषा अधिकारी आगरा, श्रीमती पूर्णिमा शरोड़कर राजभाषा अधिकारी नागपुर, श्री राजरंजन श्रीवास्तव राजभाषा अधिकारी जबलपुर, श्री एच.वी.सुमंत राजभाषा अधिकारी सोलापुर. श्रीमती दीपा मंद्यान राजभाषा अधिकारी मुंबई मंडल,और सहयोगी वरिष्ठ अनुवादक सर्वश्री भूप सिंह आगरा, शंकरसिंह परिहार नागपुर, राजू तलेकर व जयवंत भुजबल, उदय ताजणे, जी.पी.सावंत, प्रदीप भोसले पुणे, मदनमोहन शर्मा, भगवानदास, वै.स. हरीराम कुशवाहा, नरेश सराठे, मोतीलाल, झांसी के विजयनारायण तिवारी, देवराज चतुर्वेदी, सतीश तिवारी, प्रह्लाद सप्रे जबलपुर, प्रकाश सरबलकर आयकर विभाग कोल्हापुर, ऊषा राजपूत मुंबई, जिन्होंने हर कदम पर साथ देकर मुझे जीवित रखा. श्री के.एन.सिंह सेनि वरिष्ठ हिंदी अनुवादक झांसी जिन्होंने पिता समान स्नेह प्रदान करके संरक्षण प्रदान किया.

श्री प्रसाद जगताप, पूर्व सदस्य ग्रांम पंचायत आंबेगांव खुर्द पुणे का विशेष आभार.

सप्तगिरी सोसायटी के श्री विनोदकुमार त्यागी, श्री रमेश पिंपले, विक्रम पाटिल, रमेश किशन परदेशी, डॉ. उदय भोसले व समस्त साथियों का.

ज्येष्ठ नागरिक संघ जांभुलवाडी रोड पुणे के अध्यक्ष श्री चंद्रकांत गुरव, उपाध्यक्ष श्री उमाकांत मास्कर,सचिव म्हालसाकांत जोशी व कोषाध्यक्ष श्री अविनाश कुलकर्णी का.

स्व. श्री शिवसागर मिश्र निदेशक राजभाषा रेलवे बोर्ड, स्व. अशोक अवस्थी तत्कालीन मुख्य परिचालन प्रबंधक मध्य रेल, मुंबई, स्व. ओमप्रकाश

मिश्र से.नि. वरिष्ठ मंडल कार्मिक अधिकारी झांसी, स्व.भुवनेश्वरी प्रताप श्रीवास्तव वरिष्ठ मंडल कार्मिक अधिकारी जबलपुर, स्व. रवींद्रनाथ चतुर्वेदी, मध्य रेल के प्रथम हिंदी अधिकारी, स्व. बाबू श्याम सुंदर प्रभात प्रकाशन, स्व. आई.एन.आर्य रेलवे सेक्शनल अधिकारी (सीबीआई), स्व. एम.डी.सूर्यवंशी मुख्य वित्त अधिकारी केडीसी बैंक कोल्हापुर, के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूं, जो मेरे लिए अधिकारी मात्र नहीं अपितु गुरु और संरक्षक थे. श्री अरुण माहेश्वरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली का जिनकी सहृदयता संवल देती रही.

श्री हेतराम सैनी से.नि. अपर जिला व सत्र न्यायाधीश, श्री सुरेशचंद शर्मा से.नि. जिला सांख्यिकीय अधिकारी और डॉ. रमेश चंद्र शर्मा सदर बाजार मथुरा का विशेष अभार.

अंत में श्री गोविंद पचौरी जी, जवाहर पुस्कालय, मथुरा का जिन्होंने मेरे आग्रह मात्र से मेरे संग्रह को प्रकाशित करने के लिए स्वीकार किया.

–सत्येंद्र सिंह

अनुक्रम

1. फ़र्क पड़ता है...21
2. फ़र्क पड़ता है –2.......................................22
3. फ़र्क पड़ता है –3.......................................24
4. फ़र्क पड़ता हे –4.......................................26
5. फ़र्क पड़ता है –5.......................................28
6. फ़र्क पड़ता है –6.......................................29
7. कसौटी...31
8. वृद्धत्व...33
9. हुनर..35
10. आत्मबोध..37
11. बदली..38
12. समानता..39
13. प्रतीति..40
14. वर्षा..41
15. षड्यंत्र...42
16. अस्तांचल..44
17. शिवाजी आओ...46
18. दर्शन...47
19. शलभ...48
20. दीपक..49
21. वरदान...51
22. चले आओ...53
23. बतला दो...55

24. हृदय-अग्नि 56
25. प्रादुर्भाव.. 57
26. उम्मीद 58
27. रेल का दर्द.. 59
28. खरीद फरोख्त.. 60
29. अभिव्यक्ति.. 61
30. नारा 62
31. सांसों का सरगम.. 63
32. सोहम् 64
33. तुम्हारी लीला.. 65
34. जरूरत 66
35. अनुभव 68
36. पगडंडी और सड़क 70
37. उमंग.. 71
38. पोस्टमैन 72
39. फोटोग्राफर.. 74
40. विषदंत.. 75
41. अंधापन.. 77
42. कचोट.. 78
43. अभिव्यक्ति के बिंब.. 79
44. तुम नहीं होते.. 81
45. अब किसके लिए.. 83
46. पितृपक्ष 85
47. स्वीकृति 86
48. श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी पर.. 87
49. बाढ़ त्रासदी 89
50. भारत 91
51. भारतीय सैनिक 93
52. आतंकी साया 95
53. अपने आपसे.. 96

54. पितृ पक्ष 97
55. परिवर्तन 98
56. जीवन 99
57. रिश्ता 101
58. हंस 102
59. अतीत 103
60. तलाश 105
61. फासला 107
62. इंतजार 108
63. प्रतिबिंब 110
64. जिंदगी की गंध 112
65. मुश्किल 113
66. ऊंचाई 114
67. सही कौन 115
68. शिक्षक दिवस 116
69. तीस जनवरी को वसंत 117
70. बंजारा जीवन का 119

फ़र्क पड़ता है

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
अगर पीने के लिए नल का पानी
नहीं मिलता.
बोर का पानी तो है
चाहे उसमें सेप्टिक टैंक का पानी
छन छन कर आए.

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
पानी का टैंकर तो है
चाहे उसमें गंदे नाले का पानी
भर कर लाया जा रहा हो.

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
बीमार होने से
बुड्ढा हो गया
जीना ही कितना
मरना ही तो है एक दिन.

पर मुझे फ़र्क पड़ता है
जब नन्हे मुन्ने बच्चे
बीमार हों
कुपोषण और अनजानी बीमारियों
के शिकार हों,
तब बहुत फ़र्क पड़ता है,
मर कर भी चैन जो नहीं मिलेगा,
नहीं, नहीं
मुझे फ़र्क पड़ता है.

◉◉

फ़र्क पड़ता है–2

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब सीमा पर
कोई जवान गोली खाता है
और
शहीद हो जाता है.

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब सीमा पर तैनात फ़ौजी
अपने साथी की शहादत पर
आंसू नहीं बहा पाता
वरन् और दृढ़ हो जाता है.

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब अपने सीने में दर्द छुपाये
बड़े लंबे बॉक्स में
अपने साथी शहीद का मृत शरीर
राष्ट्रीय झंडे में लपेट
बिना आंसू बहाये
उसके परिवार के सामने
रख देते हैं.

लेकिन मुझे तब फ़र्क पड़ता हे
जब शहीद के मां बाप
आंसू छिपाये रोते हैं
और कहते जाते हैं

कि काश हमारा दूसरा बेटा होता
तो उसे भी सीमा पर भेज देते.

मुझे फ़र्क पड़ता है तब
जब शहीद का आठ वर्षीय बालक
पिता के दाह संस्कार के बाद
रोता नहीं और
बिना आंसू गिराये बोलता है
मैं भी अपने पिता के समान
बहादुर बनूंगा.
तब बहुत फ़र्क पड़ता है.

◉◉

फ़र्क पड़ता है–3

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब किसी शहीद फ़ौजी की पत्नी
सफेद कपड़ों में
सूनी मांग,
सूना, सूना जीवन
बिताने तैयार होती है,
अपने नन्हे मुन्नों को
सामने रखकर .

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब किसी आतंकी गोली का शिकार
सिपाही दम तोड़ता है
और उसके बच्चे
मूक झांकते हैं
भविष्य के जीवन में
प्रश्न भरी आंखों से,

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब कोई नागरिक
गलती से ही सही
गोली का शिकार होता है,
उसकी मां, बहन व बेटियां
दहाड़ मार कर रोती हैं.

लेकिन मुझे फ़र्क पड़ता है
जब सीना आदमी का होता है

गोली बंदूक की होती है,
न बंदूक वाला जानता है,
किसे मार रहा है
और न ही
गोली खाने वाला जानता है
उसे कौन मार रहा है.
गोली और आदमी
लगता है
दोनों मैं ही हूं.

⊙⊙

फ़र्क पड़ता है-4

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब इंसानों की भीड़ का हिस्सा
भीड़ के दूसरे हिस्से के साथ
हथियार लेकर आपस में
भिड़ जाते हैं,
एक दूसरे का खून बहाते हैं.

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब घायलों के सीने से
खून बहकर धरा पर
एक हो जाता है.
और अपने आधार की
पहचान खो देता है.

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब गाय,भैंस,बकरी,मुर्गी
के नाम पर
हत्याएं हो जाती हैं
पत्थर चल जाते हैं.

मुझे फ़र्क तब पड़ता है
जब लगता है कि तलबार
मेरे सीने में घुसती जाती है
पत्थर मेरे सिर को
फोड़े डालते हैं

पर मेरा खून
अकेला बहता है
धरा को लाल करते हुए
तब मुझे
बहुत फ़र्क पड़ता है.

⦿⦿

फ़र्क पड़ता है-5

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब सरकार कोई निर्णय लेती है
संसद में, देशहित में
आखिर सरकार को
मैंने ही चुना है.
जब विरोधी दल
चुनी हुई सरकार के
हर निर्णय का करता है विरोध
देशहित में,
आखिर विरोधी भी
मैंने ही चुने हैं.
दोनों देशहित करते हैं
मेरे चुने हुए, पर
मुझे फ़र्क तब पड़ता है
जब मुझे भूल जाते हैं दोनों
एक दूसरे पर
देशद्रोह का आरोप लगाते हुए
मेरी देशभक्ति की छाती पर
पैर जमाये.
और अपने सीने पर पड़े
इस बोझ से
मुझे बहुत फ़र्क पड़ता है.

◉◉

फ़र्क पड़ता है-6

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब शिक्षा व विद्या के मंदिर
बांए/दांए में बंट जाते हैं
और पढ़ाई के नाम पर
आपस में मारपीट करते हैं,

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब एक दूसरे के अपराध
पक्ष/विपक्ष में बंट जाते हैं,
और अपने अपने पक्ष में
उचित ठहराते हैं
लगता है
अपराध तो हुआ ही नहीं.

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब बच्चे घायल होकर
अस्पताल में
भरती हो जाते हैं
और डाक्टरी इलाज भी
पक्ष विपक्ष में बंट जाता है.

मुझे क्या फ़र्क पड़ता है
जब छोटे छोटे बच्चे
लापरवाहियों के कारण

सैकड़ों की संख्या में मर जाते हैं
और लोग बाग दोषारोपण करते हैं
एक दूसरे पर,
अपनी अपनी रोटियां सेंकते हैं.

हां, फ़र्क तब पड़ता है
जब मरे हुए बेटे को देख
या घायल बेटे को देख
एक पिता, एक माता
दहाड़ मार कर रोते हैं
तब मुझे बहुत फ़र्क पड़ता है.

◉◉

कसौटी

वफादारी/
वफादारी ही होती है,
अंधभक्ति नहीं.
गर अंधभक्ति बन गई
तो वफादारी कहां रही.
वफादारी स्वानुशासन है
अंधभक्ति स्वार्थ और
प्रभावाधीन होती है.
बलिदान दोनों में है-
वफादारी बलिदान देती है
अंधभक्ति
बलिदान लेती है.
ऐसे ही होता है
कानून मानने
और मनवाने में.
जो नहीं मानता/
उसीसे तो मनवाया जाता है
वरना--
जो मानता है
उससे मनवाने का क्या अर्थ है.
ठीक वैसे ही/जैसे
मातृ-पितृ भक्ति होती है
संतान मोह होता है.
दोनों में झीनी सी चादर
का अंतर है.

इसीलिए
अन्याय करना बहुत आसान होता है,
न्याय करना बहुत कठिन.
क्योंकि वह
कसौटी होती है.
और कसौटी
झूठ नहीं बोलती.

⦿⦿

वृद्धत्व

मैं वृद्ध हूं
ब्रह्मा की तरह.
जीवन भर रचता रहा
झोंपड़ी, मकान व भवन
गगनचुंबी अट्टालिकाएं
पुत्र, पुत्रियां और रिश्ते
समाज, संस्थाएं व सभ्यताएं,
आचार, विचार, नियम
बनाता रहा, रचता रहा
जीवन भर.
मेरी सब रचनाएं
सर्वसुखाय व सर्वहिताय हैं.

अब क्या चाहिए
किससे चाहिए
कौन देगा, वह
जिसे मैंने दिया है
नहीं–
मैंने दिया है, मैंने रचा है
देने के लिए,
छीनने के लिए नहीं.

ब्रह्मा अमर हैं
वृद्धत्व भी अमर है,
आकर जाता नहीं

पीछे लौटता नहीं
बस आगे बढ़ता है
श्वेत, स्निग्ध, सुमधुर
अवसान की ओर
सब कुछ देकर
सौंप कर,
रचकर,
वृद्धत्व से भी आगे.

◉◉

हुनर

ये महल, ये अट्टालिकाएं,
तुम्हारे सपने होंगे,
ये हुनर मेरे हाथ का है.

गगन में कैसे चढ़ा जाता है
तुमने बहुत अध्ययन किये हैं
शोध किये हैं,
लिखा हुआ मेरे हाथ का है.
एक के ऊपर एक ईंट रखकर
गगनचुंबी पहुंच कैसे बनती है
नित नये अभ्यास करते हो
मिट्टी, लोहा, सीमेंट प्रयोग करते हो
इनके प्रयोग का अनुपात
मेरे हाथ का है.

समय का आभास मुझे है,
पूर्णता पर जाना है
अहसास मुझे है
भवनों से मुझे कोई मोह नहीं
मात्र पूर्णता ही मेरा मंतव्य है,
गंतव्य है,
अनवरत गतिमान रहना कर्तव्य है
सबकी आंखों का सपना
साकार करना
मेरे हाथ का है.

मैं बिकता नहीं हूं,
न अपना कुछ बेचता हूं,
खरीदता हूं.
बस सबके सपने निहारता हूं
उन्हें सच करता हूं,और
सच होने पर चल देता हूं
किसी और के सपने साकार करने
दिखाने हुनर अपने हाथ का.

⦿⦿

आत्मबोध

मैं तुम्हें
बहुत प्यार करता हूं,
बस इतनी सी प्रार्थना है
कि, मेरी सांसों पर अधिकार
मेरा ही रहने दो.

इससे मुझे अपना
अस्तित्व बोध
होता है.
और अगर
जन, दल, बल से
अधिकार ही जमाना है
तो मेरे मन से
ईर्ष्या, द्वेष, घृणा व अहंकार
का बीज ही समाप्त कर दो
मैं जीवन भर
आभारी रहूंगा.

⊙⊙

बदली

कितने गरम थपेडे खाकर
कितनी सूनी आंखों के सपने देख
कितनी बचपनी उमंगों की आस देख
खिलने को आतुर कलियों के नयन देख
बदली बरस गई
आज बदली बरस गई.

बूढ़ी दादी की सूखी आंखों में मेघ लख
उसकी स्नेहल आंखें हो गई सजल
सूरज चाचा के ऊपर छाई
उमड़ घुमड़, उमड़ घुमड़
और बदली छा गई
आज बदली बरस गई.

कारे कारे बदरा छाए
छम छम पानी की बौछारें लाए
हरियाली पांखुर लाए
चिड़ियों की चहकारें लाए
बदली सिहर सिहर गई
आज बदली बरस गई.

◎◎

समानता

चलो मित्र घूम आएं
वहां,
जहां,
न कोई अपना हो
न पराया हो
भीड़ भी चलेगी
पर इंसानों की हो.
जो जिसका कर्तव्य हो
बिना शक करने दिया जाए
अपना कर्तव्य
बिना कहे किया जाए
स्वयं पर विश्वास किया जाए
औरों का विश्वास छला न जाए
चलो मित्र घूम आएं
वहां,
जहां,
फूल और कांटे
समान रहते हों.

⊙⊙

प्रतीति

बैसाखी ही सही
पर चलता रहूंगा
कितने भी कांटे
आएं मार्ग में
पुष्प बिछाता रहूंगा.

उम्मीद रहेगी सदा
प्रतीक्षा रहेगी सदा
तुम्हारी
और आकर तुम्हीं
बताओगे एक दिन
कि सत्य क्या है.

सदियों से लोग
बता रहे हैं
पर प्रतीति नहीं होती
अनुभूति नहीं होती.

शब्द, शब्द बनकर ही
रह जाते हैं,,,

तुम आओगे न!!

वर्षा

बड़ी मन्नतों से आती है वर्षा
थोड़ी मेहरबान हुई कि
पन्ने भर जाते हैं उसके खिलाफ
छुप जाते हैं लोग
अट्टालिकाओं में
फिर भी कुछ बेघर लोग
मनाते हैं खुशियां
नाचते, कूदते हैं उनके बच्चे
नहाते हैं, खिलखिलाते हैं.

खुश होते हैं किसान
और निकाल लेते हैं औजार
खेत में काम करने
दुनिया का पेट भरने.

ऋण लिया था न
अपना पेट भरे न भरे
ऋण चुकाने की खातिर
अन्न उगाना ही होगा.

◉◉

षड्यंत्र

जीना नहीं सिखातीं
औरों की हमदर्दियां
क्योंकि आदमी
अपना ही हमदर्द है.
मेरी अमीरी
मेरी गरीबी
मेरी अपनी है
किसी और से क्या संबंध.

पाप है, किसी को
हमदर्दी पर जिलाना,
अपराध है
किसी को
हीनताबोध कराना.

कोई किसी से
उच्च व नीच
कैसे हो सकता है
भला.

ऐसा करना या कहना
षड्यंत्र है
अस्तीत्व के खिलाफ.

परेशानियां पैदा करके
निराकरण हेतु
आगे आना
उसी षड्यंत्र का
एक हिस्सा है.

⊙⊙

अस्तांचल

भुवन भास्कर का गमन देखते रहे
प्रकाश का तिरोधान देखते रहे
यही जीवन है
यही मृत्यु है
रोज जागना जीवन है
रोज सोना मृत्यु है.

जीवन पर अधिकार नहीं है
मृत्यु पर अधिकार नहीं है
भ्रम केवल यह है
अधिकार मान लेते हैं लोग
और भटकते रहते हैं लोग
यही भटकन दुख का मूल है
सत्य का ज्ञान सुख का मूल है

लेकिन यह सुख वह नहीं जो अभिप्रेत है
देह को आराम देना सुख का नहीं हेतु है
यह सुख आनंद है
जिसका विरोध नहीं है
जिसका विरोधी नहीं है.

उठ, और देख
भुवन भास्कर का गमन
भुवन भास्कर का उदय
अगर समझते हो अस्तित्व का अंश

भुवन भास्कर का अंश समझ लो
वरना तुलना क्या है
उसके गमन और अस्त की.
सुख-दुख, आराम, यश और नाम,
सब भ्रमजाल है,
सोचो, बनो और करो
जो प्रकृति चाहती है
भुवन मोहिनी चाहती है.

⦿⦿

शिवाजी आओ

माना गुरु वशिष्ठ ने, विश्वामित्र ने
तैयार किया राम को रावण मारने.
पर कृष्ण तो पैदा होते ही लड़े
कंस को मार कर गुरुकुल गये.
और जीवन भर लड़ते ही रहे
समाज को भयरहित करते रहे.
चाणक्य ने गुरुकुल उपयोग किया
चंद्रगुप्त ने नंद वंश समाप्त किया.
जीजा मां ने पैदा किये शिवाजी
जिन्होंने स्वराज्य की नींव डाली.
छात्रों के उपयोग हुआ सदा से
समाज सौहार्द्र निर्भयता के लिए.
आजादी हेतु बलि चढ़े तमाम छात्र
अपना देश बसाने चले आज छात्र.
पर समाज क्यों अशांत हो गया
छात्र जीवन क्यों भटक गया.
उनमें दक्षिण वाम का भेद घातक
बेटे की सुरक्षा हेतु मां बनी चातक.
मां जिजाऊ हो, प्रकट फिर से
तुम्हारी जरूरत आन पड़ी है.
आओ शिवाजी महाराज आओ
भारत को अब राह पर लाओ.

◉◉

दर्शन

जीवन नदी के किनारे अकेला
खड़ा सोचता हूं जाऊं किधर मैं,
अपना पराया न कोई जगत् में
है कौन वो चाहता हूं जिसे मैं,

विरह वेदना है गतिमय निरंतर
न मिला निवारण कोई व्यथा का,
विरह संतप्त हृदय है रोता
न मिला है चिह्न कोई व्यथा का,

आंखों से क्या शिकवा करूं मैं
जो देख पाती नहीं खुदी को,
पांव से भी कुछ कहना निरर्थक
जो करे मंजूर निज बेकसी को.

यह चाह मेरी रही पूरी अधूरी
न कोई मिला जो उससे मिला दे,
साधन बना न कोई भी मुझसे
है कौन साधक जो उसको दिखा दे,

शलभ

अंधेरे में भटकता शलभ हूं मैं
रोशनी के वास्ते विकल हूं मैं.

रोशनी देता चिराग बैठके अंधेरे में
उस अंधेरे में पड़ा निस्पंद हूं मैं,
बेदर्द जमाने के सताये हुए कवि की
तिरस्कृत उपेक्षित छंद हूं मैं.

कांटों में खिले फूल देते हैं सुगंध
हर पहुंच से बाहर का मकरंद हूं मैं,
सुवासित करता अजीजों-रकीबों को
उस खिले फूल की सुगंध हूं मैं.

दीप की अवधि बढ़ाके तम को हटाले
पाने प्रकाश पुंज को उन्मत्त हूं मैं,
भस्म करता कीट उड़कर दीप को लख
भस्म करने स्वयं को उत्कंठ हूं मैं.

अंधेरे में भटकता शलभ हूं मैं,
रोशनी के वास्ते विकल हूं मैं.

◉◉

दीपक

दीये की बाती जलती जाती
एक संदेशा देती जाती.

कितने आये मेरे अपने
और दिखाये मीठे सपने
उलझा था मैं सपनों में
खोया था मैं अपनों में
गठरी मेरी हो गई खाली
दीये की बाती जलती जाती.

सबके हैं रंग रंगीले
सबके हैं साज सजीले
बदली बदली सबकी भाषा
बदली सारी हैं परिभाषा
प्यार की बात कही न जाती
दीये की बाती जलती जाती.

किस-किस को बदनाम करें
किस-किस को हम याद करें
दुनिया बदली जाती है
यहां बोली, बोली जाती है.
बिकने की जब बारी आती
दीये की बाती जलती जाती.

करलो मेरे सपनों का सौदा
करलो मेरे अपनों का सौदा
पेट तुम्हारा रहेगा खाली
सौदा करने वाले माली
कलियां फूल नहीं बन पाती
दीये की बाती जलती जाती.

⦿⦿

वरदान

स्वतंत्रता के अंधे क्षणों में
स्वयं को भले ही भूल जाऊं
पर तुम्हें न भूल पाऊं
यही वर मांगता हूं.

जग के अवसाद घनेरे
लगा खड़े हों अनेक घेरे
छाई हो अभाव की चादर
ज्यों अमां के अंधेरे
विकलता की विफलता में
स्वयं को भले ही भूल जाऊं
पर तुम्हें न भूल पाऊं
यही वर मांगता हूं.

संयोंग और वियोग की
प्रिय की, अप्रिय की
मान की, अपमान की
जीवन और जहान की
फंसा अठखेलियों में
स्वयं को भले ही भूल जाऊं
पर तुम्हें न भूल पाऊं
यही वर मांगता हूं.

इंद्रियजन्य लिप्सा में
मनोजन्य लालसा में

चंचला की चंचल गति
दृश्यों की सुंदरता में
आकर्षण की विभोरता में
स्वयं को भले ही भूल जाऊं
पर तुम्हें न भूल पाऊं
यही वर मांगता हूं.

⊙⊙

चले आओ

चले आओ, चले आओ
मृदु हास लेकर,
एक मिठास लेकर
बैठा हूं मैं कब से
इंतजार में तेरे. चले आओ..

दूर क्षितिज के पार कहीं
तेरा वास बताते हैं,
मेरे दिल के गहन आकाश में
बादल मंडराते हैं
बरसो, बरसो
अमिय धार लेकर
इक प्यार लेकर
बैठा हूं मैं कब से
इंतजार में तेरे. चले आओ...

अनगिनत सुमनों के रूप
दिल में मैंने बसाये थे
सतरंगी डोरी में बंधकर
टूटे सपने सजाये थे
निरखो, निरखो
रंगों का निखार लेकर
इक बहार लेकर
बैठा हूं मैं कबसे

इंतजार में तेरे
चले आओ, चले आओ.

तेरी मेरी बातों की गिनती
करना एक कहानी है,
कल क्या था
कल क्या होगा
सुनो आज की जुबानी है.
मन के टूटे तार लेकर
दिल के गुबार लेकर
बैठा हूं मैं कब से
इंतजार में तेरे
चले आओ, चले आओ.

बतला दो

हमने सर्वस्व निछावर कर डाला,
तुम छीन चले मुस्कान अधरों से,
स्नेह सिक्त हृदय स्वयं दे डाला
क्या स्तुति हो स्वर विहीन अधरों से.

जीवन बीत रहा अब सुनते सुनते,
बात न अपनी कह पाया तुमसे,
अवसर भी न दिया कह पाने का
बस आये और चले गये कहते कहते.

तुम छाए रहे हमेशा बादल की तरह,
शुष्क हृदय पर इक बूंद नहीं डाली,
चाहते रहे फिर भी यही सदा मुझसे
तुम्हें छोड़ न पकड़ूं कोई दूजी डाली.

अब इस अंतिम पड़ाव पर बतला दो
मेरी निजता क्या है अब जतला दो,
मकसद क्या, मंजिल क्या थी जीने की
अब तो आकर तुम बतला दो.

◉◉

हृदय-अग्नि

इक आग सी जलती है सीने में
लथ-पथ नहीं होता पसीने में,
बस इक आह सी निकलती है
कुछ नजर नहीं आता है जीने में.

कौन, जिसका अभाव खटकता है
बहुत सोचा, पता नहीं चलता है
किसे चाहें, किसे न चाहें भला,
मुझे चाहा किसी ने ऐसा लगता है.

यक़ीनन प्यार तो करता हूं मैं भी
सामने से निकले जो अभी अभी
जाने के बाद ख़याल आता है ये
कहीं ये ही तो नहीं, ये ही तो नहीं.

प्रादुर्भाव

कितनी बारीकी से है सत्य छुपा,
ढोल नगाड़ों के शोर में सत्य छुपा.
जिसकी जितनी ताकत थी यहां,
उतनी ही ताकत से रहा सत्य छुपा.

एक ही नगर में सब कुछ घट रहा
एक ही मन में सब कुछ पनप रहा,
छुपा, उजागर सत्य लख रहे लोग,
घर की खिड़की से जो झलक रहा.

कुछ प्रयास-रत हैं कुछ पाने को,
कुछ पाये हुए को छुपाने को,
कुछ बनाने में लगे हुए वर्षों से
कुछ लगे हैं टूटे हुए बचाने को.

सृजन और ध्वंस समझ न आ रहा,
कौन गुट क्या करे समझ न आ रहा,
नीड़ का निर्माण हो गया बिखराव,
जीवन का प्रादुर्भाव समझ न आ रहा.

⊙⊙

उम्मीद

वे आये मेरे सामने वक्त की तरह,
लौट कर कभी न आने के लिए.

मैं हूं कि इंतजार करता हूं हर रोज,
उम्मीद है बदले रूप में आने के लिए.

कोई नहीं जानता बदला हुआ रूप,
पर वो सक्षम है बदल पाने के लिए.

कभी तो अंतस् खुलेगा ही उनका
अपना रूप मुझे समझाने के लिए.

पता नहीं कि मैं समझ भी पाऊंगा
देखे हैं बदले रूप भरमाने के लिए.

असत्यों में घूमता रहा जिंदगी भर
सत्य तलाशा, अपनाने के लिए.

न सत्य मिला न वे आये लौट कर,
छोड़ दिया भंवर में भटकाने के लिए.

मैं और तू का भटकाव जारी है अब,
आ जाओ सत्य को समझाने के लिए.

◉◉

रेल का दर्द

कहते हैं, प्रांत प्रदेश क्षेत्र जोड़ती रेल चली,
और, भाषाओं के भावों की इक लंबी बेल बढ़ी.

मानें, रेल की भाषा मेल की भाषा हिंदी भाषा,
पर, प्रदेश न चाहें, क्षेत्र न चाहें, हिंदी भाषा.

प्रांत और पुलिस रेल की, मानें अपनी भाषा,
कैसे रेल चले संग लेकर अपनी मेल की भाषा.

सभी क्षेत्र और न्यायालय की भी निज भाषा,
और चाहते, रेल अपनाए उन सबकी भी भाषा.

क्या रेल अकेली, बाईस भाषा साज़ सकेगी,
एक जुबां से, सभी जुबानों को बांध सकेगी.

सम्मानजनक और समृद्ध हैं सारी भाषाएं,
इक सूत्र-भाषा संग कब गुथेंगी ये भाषाएं.

सब प्रांत बीच संपर्क हेतु कब होगी इक भाषा,
और संविधान की कब पूरी होगी अभिलाषा.

आओ सोचें और विचारें, बातें अपने देश की,
जग वालों को बतला दें भाषा अपने देश की.

तभी चलेगी, रेल, प्रेम और सद्भाव की,
तभी बहेगी सारे देश में नदी भाषा-भाव की

◉◉

ख़रीद फ़रोक्त

हर दिन ज़िंदगी को बेचते हैं हम
ताकि जी सकें.
चाहे पहाड़ों के उस पार रहें,
या इस पार
मैदानों में रहें
या पठारों में.
हमें ज़िंदगी बेचनी होती है.
कभी अपने ठिकाने पर
और कभी बाहर जाकर.
कभी कभी हम हाट लगाते हैं
जिंदगी की,
बिछा देते हैं
अपना हुनर
बेचने को
वे कीमत लगाते हैं
फिर भरता है सबका पेट.
जब तक शरीर चलता है
हमारी ज़िंदगी चलती है.
अपना शरीर ही
हमारी जमा पूंजी है.

⊙⊙

अभिव्यक्ति

कुछ सुविधाओं के सब्ज़बाग
भूख की मरोड़
अभिव्यक्त नहीं होने देती,
यही कारण है
आदि प्रश्न का उत्तर नहीं सूझा
तो एक प्रतीक बना दिया और
होठों पर लगा दिया एक ताला
विरोध का,
जो आज भी लगा है.
जो कहा जाता है
जो सुना जाता है
ताले के भीतर ही
बाहर तो घोर विरोध है
या केवल शोर है
इसीलिए मौन
एक अजेय अस्त्र हे
आज भी और आगे भी.
कौन सी बात किससे कहूं
कैसे कहूं
अपनी बात अपनों से कैसे कहूं
परायों से कहने का तो प्रश्न ही नहीं उठता
तुम्हीं बतादो
मेरी भाषा में.

नारा

कुछ नारे या डायलाग
उपदेश लगते हैं
लेकिन दूसरों के लिए
और जब अपनी बारी आती है
कह देते हैं
डायलाग अच्छा है.

कुछ ऐसी ही
मानसिकता में जीनेवाले
समाज की जोंक बनकर
रह गए हैं
और समझते हैं
समाज को सुधार रहे हैं.
सुधारने के लिए
उन्हें एक पात्र चाहिए
इसलिए चाहते हैं
कुछ लोग बिगड़े रहें
और उन्हें रटे रटाए डायलाग
उपदेश लगने लगें.
यही डायलाग
उनके नारे बन जाते हैं.

⊙⊙

सासों का सरग़म

कहां फ़ुरसत है
सासों का सरग़म सुनने की,
जब धुनें ही बेकार हो गई हों
कहां फ़ुरसत है
उनकी टंकार सुनने की,
कहां फ़ुरसत है
सुनने की
दिलों की धड़कनें,
जब दिल प्लास्टिक के
हो गये हों.

और,
चंद मशीनी लोग
लोगों को भीख में
ज़िंदगी बांट रहे हैं,
मसीहा बन रहे हैं,
यह भूल कर कि
मसीहा ने क्या किया था
और उसके साथ
क्या हुआ था.

⊙⊙

सोहम्

मैं ही हूं सब कुछ
माता पिता
भाई बहन
पुत्र पुत्री
मित्र शत्रु
गुरु शिष्य,
जितनी कोशिशें हुईं
भिन्न वादों की
रिश्तों की
सामाजिक सरोकारों की
मुझे भुलाने की
भरमाने की
मैं उतना ही पुष्ट होता गया.
अपने आप में
दूसरों में,
जीव जंतुओं में
प्रकृति में
बहने लगता
एक स्वर
सोहम्
सोहम्
जीवन सफल हो जाता.

⊙⊙

तुम्हारी लीला

तो तुम
अपने को मनवाने
भय दिखाओगे
मगर
हृदय में भय
घर कर गया तो
तुम कहां
रह पाओगे.

पहले डगर बनादो
लक्ष्य बना दो
फिर भय बना दो,
न डगर पर चल सकें
न लक्ष्य पा सकें
पर
चलने और पाने को
विवश भी हो ,,
यह क्या लीला है
तुम्हारी.
यही कहना है न.

⊙⊙

ज़रूरत

न जाने क्यों,
हर कैद सीमित लगने लगी है
अपराधों के क्षितिज में
एक बिजली सी चमकने लगी है.
मानवीय मूल्यों का निरंतर ह्रास
अध्यात्म की ऊंची उड़ान
स्पर्धा कर रही हैं
आदमी के
जीने की ज़रूरत महसूस कर रही है.

न जाने क्यों,
उनकी नफ़रत प्यारी लगने लगी है
ज़िंदगी घुलने मिलने लगी है
सोचता रह जाता हूं मैं खड़ा
दगाबाज़ प्यार को अपनाऊं
या तुम्हारे प्यार की नफ़रत
जीने की ज़रूरत के लिए
क्या अपनाऊं.

न जाने क्यों,
मैं बढ़ता ही जा रहा हूं
उनके प्रेम पाश में
बंधता ही जा रहा हूं
फूलों की चुभन के साथ

जीता चला जा रहा हूं
मौत आने तक
क्या हश्र होगा मेरा,
संतोष के लिए सोचता हूं
मगर ज़िंदगी
मरने के लिए ही तो नहीं है
जीने के लिए है
इसीलिए
उनकी बेवफ़ाई सहता
जा रहा हूं,
जिंदगी के कांटे समेटे हुए
क्योंकि फूल तो
उन्हें भेट कर दिए.

⊙⊙

अनुभव

प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष
अनुभव की अपनी परंपरा है,
अपनी प्रक्रिया है, लेकिन
फिर भी मानव असहाय है
अनुभव की दहलीज पर.
क्योंकि वहां तक आते आते भी
अनुभवों से गुजरना पड़ता है,
और
आज में प्रवेश का समय आया
तो अनुभव योग्य न रहा
क्योंकि अनुभव भूत का था
आज का नहीं.

अनुभव के नाम पर
जो कुछ कहा गया है
जो कुछ लिखा गया है
नैतिकता, अनैतिकता के नाम पर
सहज विश्वास नहीं होता
फिर भी कभी विश्वास में
कभी अविश्वास में
जीवन बीत रहा है
रीत रहा है
चाहता हूं शब्दों को
बाना पहना दूं
परंतु जो शब्द चुनता हूं

वे अपना अर्थ खो देते हैं
जो अर्थ चुनता हूं
उसे शब्द नहीं मिल पाते.
लोग तो शब्दों के वे ही अर्थ लेते हैं
जो लिए जा चुके हैं,
मैं वह अर्थ लेना चाहता हूं
जो मैंने स्वयं लिए हैं.
परंतु फिर भी
उनकी प्रतिस्थापना की लालसा
क्यों है, यह अनुभव से परे है.
कहां जरूरी है
जो कल हुआ वह आज भी हो
या जो आज हो रहा है
वह कल भी हो.

सूरज अनंत काल से है
लेकिन कभी बासी नहीं होता.
फिर भी कुछ तो प्रभाव
पड़ता होगा.

◉◉

पगडंडी और सड़क

पगडंडी को सड़क
बनते देखा है,
सड़क को पगड़डी भी
बनते देखा है.

जिस दिन कोई
महान
गुज़रा था-
पगडंडी सड़क बन गई थी.
लेकिन,
उसके गुज़र जाने के बाद
दिन पर दिन
सड़क घिसटती गई
और
फिर पगडंडी बन गई.

जब आमजन
पग पग चलते हैं
तब बनती है पगडंडी.

पर सड़क
प्रगति की निशानी है.

उमंग

महीनों से इंतजार करता था
दीवाली, होली का
क्योंकि गांव जाया करता था,
जिनके साथ खेला, बढ़ा,
सबकी सूरत
कौंध जाती थी.
उमंग बढ़ती जाती थी.
ज्यों ज्यों उम्र बढ़ती गई
गांव सिमटता गया
शहर बढ़ता गया
यार दोस्त गायब होने लगे.
उमंग कम होती गई
गांव का माहौल बदल गया
धीरे धीरे गांव जाना कम होता गया
दीवाली होली के पर्व
छोटे होते गए.
उमंग मरती गई.
फिर उमंग जागी
नन्हे मुन्नों की
किलकारियों के साथ.
उनके हाथों में लगी
पिचकारी के साथ.

◉◉

पोस्टमैन

शहर से कस्बा
कस्बे से गांव,
गुनगुनी सुबह
छांव भरी शाम.
तपती दोपहरी में
यादों के साथ
आता है पोस्टमैन.

सबके दुआ सलाम
बिखरे से अरमान
उम्मीदों की धरती
हर मौसम बरसात
लाता है पोस्टमैन.

अथ सिद्ध श्री शुरुआत
थोड़ा लिखा बहुत समझना
अपने हाल चाल बताना
जाना पहचाना एक विराम
लेकर आता है पोस्टमैन.

दादा दादी का पोपलापन
नाना नानी का दीवानापन
मामा मौसी चाचा चाची
पापा मम्मी की लाड़ली शिकवन

भैया भाभी की मीठी झिड़कन
याद कराता है पोस्टमैन.

बहन की आशा राखी मनुहार
भाई के जिम्मेदार बिदा उपहार
दीवाली की फुलझड़ियां फटाके
होली के लाल हरे पीले गुलाल
दिखलाता है पोस्टमैन.
बैसाखी रेबड़ी और दसहरी शान
खट्टा मीठा स्वाद
करवाता है
पोस्टमैन.

⦿⦿

फोटोग्राफर

कल एक सरकारी फोटोग्राफर
सस्पैंड हो गया
कारण यह था कि
उसने जो फोटो खींचे थे
उसमें वे पौधे नहीं थे
जो मंत्रीजी ने रोपे थे
और उनका वर्णन
शब्दों से नहीं खाता था मेल.

सस्पैंशन आर्डर हाथ में लिए
निशब्द खड़ा था फोटोग्राफर
होली के दीवानों के बीच
फंस गया
कैमरा हाथ से चला गया
होली के दीवानों ने
दनादन फोटो खींच लिए
एक पत्रिका में छपवा दिए.

फोटोग्राफर का फोटो
सर्वोत्कृष्ट माना गया
क्योंकि
जिस आंख से वह
फोटो खींचता था
उसमें से लहू टपक रहा था.

⊙⊙

विषदंत

खोजने होंगे विषदंत
उन प्रवृत्तियों के
जो आदमी को
आदमी नहीं रहने देती.
अपने आप को अलग
रखकर
जिसकी बात
हर आदमी करता है
देखना होगा
वह आम आदमी.
शारीरिक व मानसिक बिखराव
अलगाव के स्वार्थी बीज
आदमी में कहां छिपे हैं
उन्हें ढूँढ़ना होगा,
तभी आजादी की बात
कर सकते हैं.
और,
जब तक ऐसा नहीं होता
आदमी गुलाम रहेगा,
यह बात दूसरी है
कि उसे पता न हो.
कुछ भी बनना या होना
कुछ बना पाता तो

आज का हर आदमी
आम आदमी की
सिर्फ बात न करता.

अंधापन

सूरज इसीलिए रोशनी देता है
दिन के अंधियारे को
चांद बन चमकता है
रात के अंधियारे में
कि
आदमी देख सके
अपनी ही तस्वीर
अपने ही आयने में.

लोग कहने लगे हैं
सूरज ठंडा होता जा रहा है
सितारे फ़ीके पड़ते जा रहे हैं,
आदमी का
ज्वालामुखी अंधापन
धरती को
क्या दे पाएगा.

◉◉

कचोट

आदमकद आइना जब मुझे निहारता है
पता नहीं कपड़े नजर नहीं आते
चेहरे पर पुती नीरसता-नीरवता
भयानक लगने लगती है
और अपने आपको भूलने की
भरसक कोशिश करने लगता हूं.

याद करता हूं यादों का उजलापन
याद आता है अंधेरापन
साहस के साथ प्रतिबिंब की आंखों में झांकता हूं
और डर के मारे अट्टहास करने लगता हूं
तभी बाहर से आवाज़ आती है
बाबू–एक पैसा दे दो
और मुझे अपने पास
पैसा होने का अहसास
अदम्य साहस भर जाता है.

फिर कर पाता हूं
प्रतिबिंब का सामना
जिसमें कपड़े भी नज़र आते हैं
मेरे नंगेपन की कचोट
कहीं दूर चली जाती है.

अभिव्यक्ति के बिंब

पुराने को चीर कर
नये को उघाड़ कर
ढूंढ़ता रहा अभिव्यक्ति के बिंब
बस यह न पूछना
मुझे क्या अभिव्यक्त करना है.
जूते की एक आंख से झांकता
बेटे का बायां पैर
बेटी की तोतली मांगें
और
बीबी की तन ढांकने की
नाकामयाब कोशिशें
पता नहीं क्यों
अभिव्यक्ति के बिंब नहीं बने,
और नये पुराने इतिहास के छिद्रों से
झांकता उझकता
चला जा रहा हूं
अकेला
सहेजे हुए उसे
जिसे मैं करता रहा नफ़रत सदा
जिसकी तिक्तता ने
मेरे प्यार को कसैला कर दिया.
अब तुम्ही बताओ
मैं कैसे करूं प्यार
और कैसे करूं वादे

सितारे तोड़ने के
आसमान से.
बस जो कहता हूं
सुनलो चुपचाप
मगर यह न पूछना
वास्तव में
मूझे क्या अभिव्यक्त करना है.

◉◉

तुम नहीं होते

तुम चले गए छोड़कर मुझे अपने देश में
और स्वयं जाकर बस गए परदेश में
तुमसे मुझे कोई शिकवा तो नहीं
पर बेटा तेरी याद बहुत आती है
जैसे आंतों में इक मरोड़ उठ आती है.
जैसे छाती को निचोड़ती हो
धुले हुए कपड़े की तरह
स्मृतियों में बन जाती कोंध की सतह.

तुम्हें देख भर लेने की ललक
सीने में पनपती है
और पिघलाने लगती है
मेरे समूचे अस्तित्व को
सीसे की तरह.
कोख़ का वास्ता क्या दूं
वह तो एक सचाई है ही,
पर जब तूने पहला कदम चला था
तब मेरा दिल उछल उछल पड़ा था
और बंध गई थी एक उम्मीद
मेरे बुढ़ापे का सहारा बनेगा.
मेरा लाल बड़ा बनेगा.
बड़े तो तुम बने
इतने कि सात समुंदर पार चले गए
पवन पुत्र की तरह लांघ गए सीमाएं
पर लौट कर नहीं आए.

मेरे हृदय का राम अभी भी आस लगाए
समुंदर के रास्ते को निहार रहा है
अपने नयनों से अविरल धार बहा रहा है.
तुम भी मुझे बहुत प्यार करते थे
किशोरावस्था तक ढाढ़स बंधाया करते थे
पर जवानी में वह प्यार कहां चला गया
यह मेरी समझ के बाहर है बेटे.
सीलन भरे घर के एक कोने में
पडी खटिया पर
जीवन बसर कर रही हूं
नितांत अकेले.
दरवाजे की हर दस्तक
तुम्हारे हाथ की सी लगती है
पर जब खोलती हूं दरवाजा
तो पोस्टमैन होता ह
तुम नहीं होते.

⊙⊙

अब किसके लिए

अब किसके लिए लिखूं गीत
रहा न कोई मीत,
रिश्ते हैं/स्वार्थ हैं, और
छलावे हैं.
जिन्होंने लिखा भले के लिए
जो लिख रहे हैं भले के लिए
उनके अर्थ बदल गये
दिल मुखौटे बन गये.
जो खुद से प्यार न कर पाये
प्यार के पाठ
पढ़ाने लग गये.
फिर भी, बढ़ते गये
बढ़ते जा रहे हैं
बलात्कार,
लोग कपड़ों में
सिमट के रह गये.
ए मेरे दिल चुप बैठ
अब शब्दों के मायने
बदल गये.
मत लिखना कोई गीत
किसी ललना के लिए
समझो उसके लिए
शब्द ही मर गये.
उन्हें अपने आप

उठने दो/बढ़ने दो
नये शब्दों को
ढलने दो.
उन्हें अपना इतिहास
रचने दो.
◉◉

पितृपक्ष

जब भी पितृपक्ष आते हैं,
बहुत याद आती है मां,
धुंधली सी आकृति तेरी
मन दर्पण में समाती है मां.
बहुत साफ करता हूं शीशा
धूल बहुत गहरी जमी है मां.
बचपन से उसके जाने तक
मालिका सी दिखती है मां.
कागा जो खाता है हर वर्ष
पता नहीं क्या पाती है मां.
मातृपक्ष होता तो लगता,
कुछ तो पाती है मेरी मां.
जब भी पितृपक्ष आते हैं,
बहुत याद आती है मां.

स्वीकृति

अपना ही विरोध
कोई कर सकता है भला
आइना खुद को
देख सकता है भला.
कौन सी और कैसी
बेचैनियां,
रोने धोने से नहीं मिलतीं
खुशियां.
अपने आप को देखो
आइने में
और खूब करो प्यार
अपने आपसे
जैसे हो, वैसे ही
स्वीकार लो स्वयं को.
कर दो क्षमा उन्हें
जो तुम्हें नहीं चाहते,
कंरदो क्षमा उन्हें भी
जिन्हें तुम नहीं चाहते
और फिर अपने आप को
क्षमा करते हुए
करदो समर्पित सभी
महाशून्य को.

⊙⊙

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी पर

प्रश्न,
प्रभु, तुमने सब बनाया
संरक्षण भी किया
मानव-दानव नाग-किन्नर
वन-उपवन जीव-जंतु
तप का फल भी दिया,
तो फिर
अपनी ही रचना को
स्वयं मारा क्यों?
यही नहीं मारने को
अवतार तक लिया.
मारना ही था
तो बनाया क्यों?
अर्जुन को जब बता रहे थे
कि ये मरे हुए ही हैं
तो मरवाने की जरूरत क्या थी
वे तो मर ही जाते न.
जो भक्त थे,
पंडित थे,
ज्ञानी थे
उनको भी तो नहीं छोड़ा.
समझा,
जो समाज के शत्रु हैं
या जिनसे समाज को खतरा है

या जिनके कारण भविष्य में
समाज का अहित होने वाला हो
तो उनको पृथ्वी पर
रहने का अधिकार नहीं है.
इसलिए अपना वंश भी
नष्ट कर डाला.

◉◉

बाढ़ त्रासदी

आसमान इतना रोया
कि
धरा का सीना भर आया
इंसान का कलेजा थर्राया
चीख उठा
भारत माता की जय
चौका चूल्हा घर छूटा
भूखे बच्चे को चिपटाये मां
कराह उठी
वंदेमातरम्
अब तू ही सहारा है मां.
कह दे आसमान से
अब न रोये
या अपना सीना
और चौड़ाकर.
पानी है पर प्यास न बुझे
भोजन है पर गले न उतरे
हे धरती–माता
तू ही धारण करती है सब
मानव की ऊंच–नीच
जीव–जानवर भेदभाव
सब तेरी कोख में है
हे धरती मां
जीवन दिया है

तो जीने दो
पेट के साथ-साथ
बुद्धि दो, शक्ति दो.
ज्ञान दो.

⦿⦿

भारत

तेरा भारत
मेरा भारत
बोलो कितने भारत
स्वराज भारत.
गांधी का भारत
बोस का भारत
नेहरू का भारत
मोदी का भारत
बोलो कितने भारत.
विवेकानंद भारत
दयानंद भारत
स्वामी का भारत
योगी का भारत
रामदेव भारत
बोलो कितने भारत.
बिरला का भारत
टाटा का भारत
अगड़ों का भारत
पिछड़ों का भारत
बोलो कितने भारत.
आदिवासी भारत
अमीरों का भारत
गरीबों का भारत
भूखों का भारत

नारों का भारत
बोलो कितने भारत.
मेरा भारत
तेरा भारत
बोलो कितने भारत.
पर भारत है एक
लगता अनेक
प्यार से रहो
बंधुभाव से रहो
और कहो
जग में भारत महान

⊙⊙

भारतीय सैनिक

मैं सो रहा था
पत्नी बच्चे सब सो रहे थे
अचानक घर के बाहर
पानी की आवाज सुनाई दी
मैं उठा/दरवाजा खोला/देखा
बाहर पानी ही पानी है
घर के अंदर घुसा आ रहा है,
मैं घबड़ाया, पत्नी को जगाया,
बच्चों को कंधे पर लिया
घुटनों-घुटनों पानी में
दौड़ने का प्रयास किया
पर चलना ही मुश्किल था
घबराहट में शोर मचाया
बचाओ, बचाओ
लेकिन पानी के शोर में डूब गया
पानी घुटनों से ऊपर आ रहा था
मेरा विवेक सो गया
बुद्धि जबाव दे रही थी
सामने देखा किसी का घर
गिर गया था,
मैं उसके मलबे पर चढ़ गया
परिवार को लेकर
अंधकार में बस आवाज
निकल रही थी, बचाओ, बचाओ

शायद मेरे गले से निकल रही थी
जाने अनजाने भगवानों को
गांवदेवी, देवता, पीर, फ़कीर
न जाने किस- किस को पुकारा
आवाज बैठ गयी
गला बैठ गया
शब्द पानी के शोर में विलीन
मेरे आस-पास कौन था, पता नहीं
जीवन शेष था पता नहीं
तभी एक प्रकाश आता हुआ दिखा
नज़दीक आता गया
आंखों में चुभ रहा था
पर अच्छा लग रहा था
तभी दो हाथ आगे बढ़े
मेरे कंधे से बच्चे को लिया
हमें सहारा दिया
और नाव में बिठा लिया
मेरे गले से कांपता सा स्वर
जी आप?
उत्तर दो शब्द मात्र
भारतीय सैनिक.

◉◉

आतंकी साया

भीड़ भरे बाजार में
वह आया
और
गोलियां दागने लगा
तमाम लोग मर गये
मैंने पूछा
मरने वालों में
तुम्हारा दुश्मन कौन था
खोई-खोई-सी आंखों से
उसने मुझे देखा
और अपने आपको
गोली मार ली।
मै सोचता रहा
इसके हाथ में जो बंदूक है
वह मशीन है
या
यह व्यक्ति स्वयं.

⊙⊙

अपने आप से

एक दिन चेहरा चमका था
सोचा, सहेज लूं
पता नहीं, फिर चमके न चमके.
सहेज तो लिया
पर एक प्रश्न भी पैदा हो गया
यह चेहरे की चमक,
क्या सच में चेहरे की है
यदि होती तो हर रोज होती
किसी एक दिन ही क्यों?
चेहरे पर चमक
आँखों में चमक
किसकी होती है भला
शरीर की चमक दमक
स्थाई नहीं है
कम ज्यादा होती रहती है
क्यों, क्या मन की होती है?
क्या बुद्धि की होती है?
क्या आत्मा की होती है?
यदि है तो
मैं, मैं किसे कहता हूं?

⊙⊙

पितृ दिवस

पिता होने की खातिर
अपने पुत्रों और पुत्री का
आभार मानता हूं
जिन्होंने मुझे
पिता होना सिखाया और मैं
अपने पिता को
समझ सका.
अपनी हर असफलता
के लिए
अपने पिता को
कोसता रहा
पर जब मैं
पिता बना
तब अहसास हुआ
कितना गलत था मैं.

◉◉

परिवर्तन

पगडंडियां, न जाने कब
सड़क बन गयीं/
ग्रामीण अंचल शहर बन गये।
और-- शहर
कांक्रीट के जंगल बन गये,
जहां न ठंडक है, न राहत है
बस एक उबास, असहनीय-सी
गरमाहट/नमकीन पानी में
नहाए/डुबोए जैसा अहसास,
न जाने सब कैसे और कब बदल गया
परिवर्तन का एक माहौल
बदहवासी में लोग बौराने लगे
धरती को आसमान मानने लगे
सच कोई नहीं जानता
झूठ भी कोई नहीं जानता
सब समझते हैं
हम सब जानते हैं।

◉◉

जीवन

पता नहीं मां ने सोचा था
या पिता ने सोचा था
कि वे मुझे ही पैदा करना चाहते हैं
या, मैंने भी सोचा था कि
ये ही मेरे मां बाप रहें
कुछ समझ नहीं आता.
उन्होंने पाला
फ़र्ज और भविष्य के लिए
मैं पला एहसान जताने के लिए.
मां बाप ने हमेशा सोचा
कि मेरा पेट भरना है
चाहे कुछ हो जाए
पर मैंने कभी नहीं सोचा
कि मुझे उनका पेट भरना है
चाहे कुछ हो जाए.
पैसे कमाये तब उनका महत्व समझा
फिर भी मां बाप को न समझा,
समझा, जब खुद मां बाप बने
पर तब तक बहुत कुछ गुजर चुका था,
आधी अधूरी नींदें
या पल पल खिसकती मौतें.
भाई बहन, मां बाप
कभी दोस्त न बन पाये,
परिवार से बाहर
कुछ दोस्त बने

कुछ जीवन के हिस्से बने
कुछ जीवन के नासूर बने
सबने जतलाया जलना/जलाना
पर हृदय की जलन नहीं समझे.
पता नहीं, कौन देता है ज़िंदगी
कौन लेता है ज़िंदगी,
रही बात खुशियों की
खुशी, मन का इज़हार है
वरना किसी को दुखी देखकर
हम खुश न होते.
भले ही शरीर की शिथिलता में
आज अट्टालिकाएं दुखदायी हों
पर बनाई हमने अपनी खुशी के लिए.
दुख के लिए तो
कभी कुछ बनाया ही नहीं,
फिर भी दुख बना रहा.
इस दुख के होने की
हमने खोज की होती
तो शायद वह सुख
मिल जाता
जो सच्चा दोस्त देता है.
आज तक समझ नहीं आया
कि उस दुख की खोज
क्यों नहीं की.

◉◉

रिश्ता

दोस्त नहीं, दुश्मन नहीं
एक मानव जड़ विहीन
अपने ही पंखों से उड़ा सदा
पर काटने को हर कोई तैयार मिला.
बचता बचता उड़ता रहा
कुछ अच्छे, कुछ बुरे
अनुभवों के बीच
जीवन ज्योत जलाता रहा.

अपने तो अपने थे
गैरों को भी अपना बनाता रहा,
जोड़े रिश्ते
कभी तोड़े रिश्ते
अपनी राह बढ़ता रहा.
संभावनाओं के बंद
कभी खुले दरवाजे
नया अहसास देते रहे
हम उन्हें महसूसते रहे,
अपने खट्टे मीठे रिश्तों के बीच.

◉◉

हंस

देहयष्टि में कैद हंस
जब भरना चाहता है उड़ान
तभी रक्त मांस मज्जा
उड़ेलने लगते हैं
अपनापन,
और घेर लेते हैं
चाहतों के अंबार.

श्रेष्ठ बनने का गुमान
न जाने कहां से कूद पड़ता है
और हंस
उड़ना भूलकर
देह में ही
फिर समा जाता है.

⦿⦿

अतीत

ओ अतीत,
तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं है
फिर भी सत्य प्रतीत होते हो,
मानो तुम नित्य हो
वर्तमान हो
जबकि तुम्हें बीते
कितने वर्ष हो गये.
तुम यादों में वसते हो
क्योंकि
यादों में सोचते सोचते
वर्तमान बीत जाता है
हाथ कुछ नहीं आता है.

तुम कभी पिता बन जाते हो
कभी पुत्र बन जाते हो
और कभी मित्र या शत्रु
तुम्हारा कोई एक रूप नहीं है,
तुम अरूप हो
फिर भी मन में
रूपवान हो जाते हो
और व्यक्ति को भ्रमित कर
सत्य से बहुत
दूर ले जाते हो
तुम्हारा सत्य से वास्ता जो नहीं है

तुम असत्य भी नहीं हो.
बस तुम अनित्य हो
जो नहीं होता
वह भ्रम मात्र है.

◉◉

तलाश

अस्तित्व की तलाश
मैं से शुरू होकर
तू तक पहुंती तो
पर
मैं के साथ अहम् जागा
और तू के साथ मैं मद.

अहम् की कारा में कैद
अस्तिस्व को ढूंढ़ता हूं
परिधानों के कहीं सूक्ष्म
शब्दजाल और
यशाकांक्षा
दूर ले जाती है
जहां न मैं रहता हं
न तू,

तू कण कण में है
आप्त वचन है
फिर एक ही प्रस्तर में क्यों,
न शून्य होता हूं
न शून्य का विस्तार होता है.
मेरा मैं
इसी ऊहापोह में
समय के कगार पर
खड़ा रहता है

अस्तित्वगत
निरालंब होने हेतु
ढूंढ़ता है अवलंब
संकल्पों विकल्पों से
आवृत्त मार्ग
लक्ष्य से पूर्व
तान देता है
एक झीनी सी चादर
और मैं उस चादर में
लिपट जाता हूं
अंदर बाहर के सत्य में
उलझ जाता हूं
तलाश जारी रहती है.

फासला

सत्य असत्य के बीच
अंतर कितना,
जमीन आसमान के बीच
है जितना.
सुना है जमीन से ऊपर
जो दिखता है,
वह वहां नहीं,
आभास ही दिखता है,
उसकी दूरी है अनंत
पर जमीन से मिला सा
दिखता है.
ऐसे ही, सत्य वह नहीं
जो कल असत्य हो जाए,
असत्य भी वह नहीं है
जो कल सत्य हो जाए.
सत्य असत्य के बीच फासला
किसीने नहीं बताया,
वह ऐसे ही है, जैसे
तेरे मेरे बीच है.

⊙⊙

इंतजार

धूमिल पदचिह्नों को देखते हुए
हथेली पर कपोल टिकाये
टकटकी लगाये
तुम्हें देखता हूं,
लौटकर न आने की सौगंध खाकर
निर्भयता की ओट में
तुम्हारी दुर्बलता
और देखता हूं,
सिसकते यौवन का उन्माद
कुलाचें भरती आजाद.
सूनी आंखों के ये स्वप्न
नहीं देते कोई अर्थ
सुकुमार सलज्ज भाव
हृदय के किसी कोने में बैठे हैं
तुम्हारे लौट आने के इंतजार में.
परंतु
तुम्हें तो सौगंध खाने का
अहसास बाकी है
फिर लौटकर देखने का सवाल
कहां उठता है.
कुछ दृष्टव्य
कुछ अतीत के अंतराल में
विलीन पदचिह्न
बन गये प्रतीक

तुम्हारे अस्तित्व के.
काश, लौटकर देख पाते
प्रेम की सहजता खड़ी है
ममता भरी बांह फैलाये
तुम्हारे इंतजार में.

◉◉

प्रतिबिंब

विगत जब आगत बन
सामने आता है
मैं बौना हो जाता हूं.

इज्ज़त का हर पहरेदार
मालिक बन जाता है
फिर भी मैं
तार तार इज्जत से चिपका हूं.

मालिकाना हक़
मुझे भी संतोष देता,
आखिर इज्ज़त ही तो जिंदगी है
इसीलिए
इज्ज़तवाले की इज्ज़त में
अमीर की अमीरी में
गरीब की गरीबी में
भूखे की भूख में
पेट की तृप्ति में
एक टुकड़ा नजर आता है
अपनी जिंदगी का
सोचता रह जाता हूं
टुकड़ों टुकड़ों में
जिंदा कैसे हूं,
क्यों हूं.

आइने में अपना ही अक्स
डरा जाता है
क्योंकि वहां, अक्स नहीं
टुकड़े होते हैं
टुकड़े भी नहीं, बल्कि
होते हैं आधे अधूरे चेहरे
चटके कांच जैसी इज्जत से
किसे ढंकूं,
इसी सोच के प्रतिबिंब
जीने के बिंब बन गये हैं.

◉◉

ज़िन्दगी की गंध

सासों के धागों में पिरोई हुई
हसरतों के दानों पर फिरती हुई
अंगुलियां अभ्यस्त,
देखता रह जाता हूं मैं
भावों का उदय और अस्त.

जब कभी अपने को
अपने पास पाया है,
जिंदगी की गंध
मेरा अंतर्मन
पहचान पाया है.

जब चाहा बन जाए
मेरा आंसू
बन जाए किसी की
आंख का आंसू
जिंदगी बंधी बंधी सी लगी
आस जगी जगी सी लगी.

⊙⊙

मुश्किल

तुम क्षमतावान हो
एक से अनेक हो गये
कोई रूप अपनाया किसी ने
कोई अपनाया किसी ने
तुमने क्या कहा
नहीं सुना किसी ने.

यूं भगवान बांट लिये
विद्वान भी बांट लिये
उनके वचन न सुने, न गुने
बस नाम बांट लिये
अपने अपने नाम
बंटे भाग से जोड़ लिये.

अब यह बतला दो
इस बंटवारे में
जाऊं कहां मैं
क्योंकि एक हूं मैं.
क्योंकि अब
अनेक से एक होना
बहुत मुश्किल है.

⊙⊙

ऊंचाई

एक पर्व हो गया
सूर्योदय हो गया
पुनीत काम हो गया
अब अनेक पर्व होंगे.

फिर शिव विवाह
बसंत का आगाज
नवरात्र आयोजन
राम जन्मोत्सव
होलिका दहन
ध्रुव का बचाव

हनुमान जयंती
गणेश जयंती
जेठ का दशहरा
सावन का फुहारा
कृष्ण जन्माष्टमी,
राम विजय,
दशानन वध
और दिवाली.

वस यूं ही बीतेगा
यह साल भी रीतेगा
जीवन यूं ही चलेगा
मानव ऊंचाई छूयेगा.

⊙⊙

सही कौन

ये कहता है, मैं सही,
वो कहता हे, मैं सही.
पर हम क्यों मानें यह,
क्या हम में अक्ल नहीं.
जिसने तुम्हें कुछ दिया,
उसी ने हमें कुछ दिया.
फिर गुमान क्यों तुम्हें,
क्यों किसी पर प्रतिक्रिया.
जितना मिले खाद पानी,
उतना ही असर होता है.
सच, सच ही है सदा,
झूठ, झूठ ही होता है.
खोजो अपने आप को,
निष्पक्ष, निष्प्रभाव बन.
यो सही, वो भी सही,
जान पाओगे एक दिवस.
सत्य किसीके भरोसे नहीं,
सत्य, असत्य होते नहीं.
स्वाद जाने, खाने वाला,
सभी शब्द अपने होते नहीं.

◉◉

शिक्षक दिवस

मेरे लिए एक यादगार है
अपने पिता की
जो शिक्षक थे
जिन्हें मैंने कभी नहीं देखा
मेरे जन्म लेते ही चले गये
संसार से
लेकिन मुझे लगता है
हमेशा
कोई मेरे साथ है
जो शिक्षा देता रहता है
सही गलत की
मन के भीतर
बहता रहता है
कहता रहता है
पिता हमेशा रहता है
बिना शरीर के.

⊙⊙

तीस जनवरी को वसंत

आज वसंत पंचमी है
और तीस जनवरी भी
हिंसा अहिंसा की बात
आज नहीं
आज नवांकुर की बात
नई शुरुआत की बात
नव वाणी की बात
नव अभिव्यक्ति की बात
सुबह से देख, सुन रहा हूं
हिंसा अहिंसा से परे.

फिर भी पुरातन में अटके लोग
अपना अपना मंतव्य
ढूंढ़ रहे हैं,
एकता अखंडता को
खंड खंड कर
देख रहे हैं
अपने अपने मतलब
निकाल रहे हैं
पुनरावृत्ति पर उतारू.

पर आज नहीं
आज वसंतोत्सव है
जो बीता तुम्हारा है

जो बीतेगा, तुम्हारा है
आओ कुछ नया करें
नया सोच भरें.

⊙⊙

बंजारा जीवन का

मैं बंजारा जीवन का
पथिक तेरे दर का
जीने की चाहत में
सांसों की राहत में
कभी यहां गया
कभी वहां गया
जम न पाया कहीं
बेचौनी सी सदा रही
कोशिश जब जब की
एक जगह बसने की
दिल ने रहने न दिया
इच्छा ने टिकने न दिया
महरबानी पर टिका
सबके बीच बिका
कंधे पर लादे घर
रहता आया बेघर
ख्वाहिशों के बाजार में
जीत जीत के हार में
मैं बंजारा जीवन का
पथिक तेरे दर का.

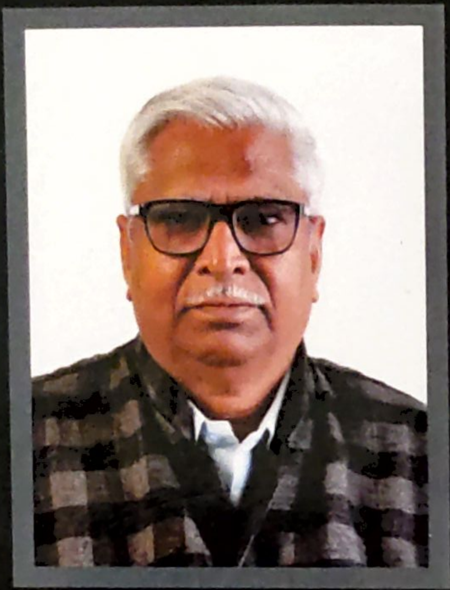

जो ग्रहण हुआ, कविता-कथा बना,
वादों में रहते निर्विवाद रहा,
न बांट पाया कोई पंथ,
मानव जन्म लिया -
मानव बना रहा.

सत्येंद्र सिंह

प्रकाशक

जवाहर पुस्तकालय

सदर बाजार, मथुरा-281001 (उ.प्र.)

ई-मेल : jawahar.pustakalaya@gmail.com

ISBN : 978-81-945489-4-2